जुलाई १९९९ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धारण करे तो धर्म

शील की परिशुद्धता

(जी-टीवी पर चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव श्री सत्यनारायणजी गोयन्का के प्रवचनों की दसवीं कड़ी)

शील, समाधि, प्रज्ञा; शील, समाधि, प्रज्ञा – इसमें सारा धर्म समा गया। धर्म की परिभाषा पूर्णतः समा गयी। धर्म की परिशुद्धता समा गयी। शील का पालन करें याने सदाचार का जीवन जीयें और सदाचार का जीवन जीने के लिए समाधि का अभ्यास करें याने मन के मालिक बन जाने का अभ्यास करें। और इतना ही नहीं, अंतर्मन की गहराइयों में जो विकारों का संचय कर रखा है उसे निकाल बाहर करें ताकि स्वभाव से ही, बिना प्रयत्न के, बिना जोर-जबरदस्ती के सदाचार जीवन का अंग बन जाय। चित्त निर्मल बन जाय। अपने भीतर ऐसी प्रज्ञा जगाएं कि सारे विकारों को निकाल फेकें। सदाचार का जीवन जीना, मन को वश में करना, मन को नितांत निर्मल करना, यह किसी एक संप्रदाय का धर्म नहीं, किसी एक समुदाय का धर्म नहीं। किसी एक जाति, वर्ण, गोत्र का धर्म नहीं। अरे, सबका धर्म है। यही तो धर्म है। किसी भी परंपरा का व्यक्ति हो, उससे धर्म की बात करके पूछें – "तुम सदाचार के जीवन को अच्छा मानते हो कि नहीं? तुम मन को वश में कर लेने वाले किसी काम को अच्छा मानते हो कि नहीं? तुम चित्त को नितांत निर्मल कर लेने वाली किसी विद्या का उपयोग अच्छा मानते हो कि नहीं?" कौन ना करेगा? सब स्वीकार करेंगे। यह अभिन्न है, सबका है।

तो जो सबका है वह धर्म है। कोई अपने आपको चाहे जिस नाम से पुकारे, कोई फर्क नहीं पड़ता। शीलवान तो बने। समाधिवान तो बने। प्रज्ञावान तो बने। तो धार्मिक हो गया। हिंदू है तो अच्छा हिंदू हो गया। बौद्ध है तो अच्छा बौद्ध हो गया। जैन है तो अच्छा जैन हो गया। ईसाई है तो अच्छा ईसाई हो गया। मुसलमान है तो अच्छा मुसलमान हो गया। पारसी है तो अच्छा पारसी हो गया। यहूदी है तो अच्छा यहूदी हो गया। अरे, अच्छा आदमी हो गया न! धर्म हमें अच्छा आदमी बनाता है, नेक इंसान बनाता है। फिर चाहे जिस नाम से अपने आपको पुकारें, इन नामों में क्या पड़ा है? धर्म जीवन में उतरे। शील, समाधि, प्रज्ञा जीवन में उतरे। इसी शील को, समाधि को, प्रज्ञा को जरा और विवरण के साथ समझाया गया और जो यह सारा मार्ग – जिस पर चल कर कोई व्यक्ति शील में पुष्ट होता है, समाधि में पुष्ट होता है, प्रज्ञा में पुष्ट होता है उसे उन दिनों की भाषा में कहा गया – "अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो"। 'अरियो' माने आर्य, 'अट्ठङ्गिको मग्गो' माने आठ अंग वाला मार्ग। आर्य अष्टांगिक मार्ग।

'आर्य' क्या होता है? २५०० वर्ष, बड़ा लंबा समय होता है। २५०० वर्षों में भाषा बदल जाती है, भाषा के शब्द बदल जाते हैं, शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। आज तो आर्य जातिवाचक शब्द हो गया। उन दिनों की भारत की भाषा में यह जातिवाचक नहीं, गुणवाचक शब्द था। किसे आर्य कहते थे? जो संत हो गया, निर्मल चित्त हो गया, शुद्ध चित्त हो गया, सज्जन हो गया, सत्पुरुष हो गया – ऐसा व्यक्ति आर्य कहलाता था। धर्म के रास्ते चलते-चलते शील में, समाधि में, प्रज्ञा में इतना पुष्ट हो गया कि चित्त नितांत निर्मल हुआ और जीवन धर्ममय हो गया। ऐसा व्यक्ति कोई बुरा काम कर ही नहीं सकता। ऐसा कोई काम कर ही नहीं सकता जिससे अन्य प्राणियों की सुख-शांति भंग हो, अन्य प्राणियों का अहित हो, अमंगल हो। ऐसा काम कर ही नहीं सकता। अब जो करेगा, अपने तथा औरों के भले के लिए ही करेगा। मंगल ही मंगल का काम करेगा, कल्याण ही कल्याण का काम करेगा। ऐसा व्यक्ति 'आर्य' कहलायगा।

आज इसे जातिवाचक रूप में लेते हैं और इसका अर्थ करते हैं तो आर्य उसे कहते हैं जो गोरे-चिट्टे रंग का हो, जिसका लंबा नाक हो, बड़ी-बड़ी आंखें हों, लंबा आदमी हो तो – यह आर्य जाति का है। कोई काले रंग का हो, घुँघराले बाल हों, मोटे होठ हों तो कहें – यह हब्शी जाति का है। किसी का रंग पीला हो, आंखें चुँधियायी-चुँधियायी, नाक चपटी हो तो कहें – यह मंगोलियन जाति का है। तो यह आर्य शब्द आज जातिवाचक हो गया। उन दिनों की भाषा में इससे कोई लेनदेन नहीं था। कोई गोरे रंग का हो कि काले रंग का, लंबी नाक का हो कि ओछी नाक का, बड़ी आंखों वाला हो कि छोटी आंखों वाला, कुछ फर्क नहीं पड़ता।

जो व्यक्ति धर्म के रास्ते चलते-चलते शील, समाधि, प्रज्ञा में पुष्ट हो गया, निर्मल चित्त हो गया, संत हो गया वही आर्य हो गया। और जो ऐसा नहीं हुआ, गलत रास्ते चल रहा है, धर्म के रास्ते नहीं चल रहा – अपना भी अमंगल करता है, औरों का भी अमंगल करता है – अरे, वह अनार्य ही है। भले उसका रंग गोरा हो, भले उसकी नाक लंबी हो, भले उसकी आंखें बड़ी हों – कोई फर्क नहीं पड़ता। वह अनार्य ही है। उन दिनों की भाषा में कहा गया – **"हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो"** – बड़ा हीन है, बड़ा गया-गुजरा है, बड़ा गँवार है, बड़ा पृथक जन है। पृथक पड़ गया – धर्म के राजमार्ग को छोड़ कर के अंधी गलियों में भटक गया। पृथक हो गया धर्म से। **'अनत्थसंहितो'** – अनर्थ ही अनर्थ संग्रह कर रहा है। अपने लिए भी अनर्थ ही अनर्थ, औरों के लिए भी अनर्थ ही अनर्थ – ऐसा व्यक्ति उन दिनों की भाषा में **'अनरियो'** कहा गया। पिछले २५०० वर्षों में इस 'अनरियो' शब्द का अपभ्रंश होते-होते आज की हिंदी में यह 'अनाड़ी' हो गया।

अरे, अनाड़ी ही तो है भाई? जो अपना भी अमंगल करता है, औरों का भी अमंगल करता है। अपनी भी सुख-शांति भंग करता है औरों की भी सुख-शांति भंग करता है, बिचारे को समझ नहीं है, बड़ा नासमझ है तो अनाड़ी ही है। अनाड़ी न रहे, होश आ जाय, समझदार हो जाय तो धर्म के रास्ते चलते हुए अपना भी कल्याण साधने लगे, औरों का भी कल्याण साधने लगे। अपने लिए भी सुख-शांति का निर्माण करने लगे, औरों के लिए भी सुख-शांति का

निर्माण करने लगे – तब आर्य बनने के रास्ते पर चल पड़ा। यह मार्ग जो हर अनार्य को आर्य बना दे – इसीलिए आर्यमार्ग कहलाया, आर्यधर्म कहलाया। यह आठ अंगों वाला है जो कि शील, समाधि, प्रज्ञा – इन तीन भागों में बँटा हुआ है। 'शील' के अंतर्गत इस आर्यमार्ग के तीन हिस्से आये – **सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो।**

'सम्मावाचा' याने सम्यक वचन। सम्यक माने जो सही है, सत्य है, कल्याणकारी है और जो स्वयं अपने अनुभव पर उतरा है। धर्म बहुत ही कल्याणकारी है, पर ऐसा पुस्तकें कहती हैं, हमारे गुरु महाराज कहते हैं या वाणी में सुना है, इस या उस पुस्तक में पढ़ा है, लेकिन जीवन में तो नहीं उतरा ना! तो सम्यक नहीं हुआ। वाणी सही है, स्वयं अपनी अनुभूति पर उतर रही है – सचमुच जीवन में उतर रही है, तभी वाणी सम्यक हुई।

क्या सम्यक वाणी? वह वाणी जिससे हम किसी भी अन्य व्यक्ति की हानि नहीं करेंगे। किसी अन्य व्यक्ति की सुख-शांति भंग नहीं करेंगे। एक ही मापदंड। धर्म का एक ही मापदंड। हम झूठ बोल कर किसी को ठगने का काम नहीं करेंगे। हम कोई कड़वी बात बोल करके किसी का मन दुखाने का काम नहीं करेंगे। परनिंदा की बात, चुगली की बात, लोगों को परस्पर लड़ा देने की बात कह करके हम किसी की हानि नहीं करेंगे। बस, इनसे बचे तो वाणी सम्यक ही सम्यक, शुद्ध ही शुद्ध। और फिर जांचता रहे कि ऐसी वाणी मेरे जीवन में उतर रही है ना! मैं सचमुच सम्मावाचा, सम्यक वाणी का पालन कर रहा हूं ना! तभी सम्यक, अन्यथा फिर पोथियों वाली, फिर गुरु महाराज वाली निकम्मी बात हो गयी। जब तक हमारे जीवन में नहीं उतरी, हमें उसका लाभ नहीं मिला, तब तक 'सम्मावाचा' नहीं हुई।

'सम्माकम्मन्तो' याने सम्यक कर्मांत। किसको कर्मांत कहें? हर कर्म पहले मन में जागता है, आगे बढ़ता है तो वाणी पर उतरता है, और आगे बढ़ता है तो शरीर पर उतरता है। वह शरीर पर उतरता है तभी कर्मों का अंत। यानी शारीरिक कर्म को कर्मांत कहा गया। तो वह भी सम्यक हो, सही हो, ठीक हो। ऐसा नहीं हो जिससे औरों की हानि होती है, औरों की सुख-शांति भंग होती है, औरों का अमंगल होता है। ऐसा नहीं होना चाहिए और फिर ऐसा नहीं हुआ – यह अपने जीवन में भी उतरे। वह सम्यक कर्मांत अपनी अनुभूति में भी उतरे। देख, मैं सम्यक कर्मांत का जीवन जी रहा हूं! यानी मैं हत्या नहीं करता, मैं चोरी नहीं करता, मैं व्यभिचार नहीं करता, मैं किसी नशे-पते का सेवन नहीं करता। यों अपने अनुभव में देख रहा है। नहीं करता, बिल्कुल नहीं करता, तो सम्यक हुआ। धारण करने लगा। सही है और स्वयं धारण किया है तो सम्यक कर्मांत हो गया।

शील का तीसरा अंग – **'सम्माआजीवो'** । हर व्यक्ति की कोई न कोई आजीविका होती ही है। जो गृहस्थ हैं उनको तो अपनी आजीविका के आधार पर ही जीना होता है और जो गृहत्यागी हैं, उनकी भी आजीविका है। कहीं न कहीं से भरण-पोषण के लिए अन्न-वस्त्र मिलता है। तो किस प्रकार मिलता है? किसी को धोखा देकर तो नहीं ले रहे? किसी को भ्रांति में डाल करके तो नहीं ले रहे? उनको अपनी बात देखनी है। गृहस्थों को अपनी बात देखनी है कि मेरी जो आजीविका है, जिस रास्ते से मेरे घर में धन आता है – जिस काम से, रोजी से, धंधे से, पेशे से मेरे यहां धन आता है, वह कैसा है? क्या उससे अन्य प्राणियों की हानि होती है? अन्य प्राणियों का अमंगल होता है? अन्य प्राणियों की सुख-शांति भंग होती है? क्या मैं कहीं ऐसा काम तो नहीं करने लगा, जिसकी वजह से अन्य प्राणी गलत रास्ते चले जायँ। वे सदाचार का जीवन नहीं जीयें। दुराचार के जीवन में पड़ जायँ। तो नहीं, ऐसी आजीविका मेरे काम की नहीं। भले अपने आपको धोखे में रखूं कि मैं तो कोई हत्या नहीं करता। ठीक बात है। तुम हत्या नहीं करते लेकिन धंधा कैसा करते हो? क्या रोजगार है तुम्हारा? यदि बंदूकों का धंधा करता हूं। कहीं-कहीं से तस्करी करके 'ए.के .फोर्टी-सेवन' मँगा लेता हूं, लोगों को बांटता हूं। करेंना, मारने का काम वे करें, हम थोड़े ही करते हैं। लोगों को हथियार बेचता हूं, गोली-बारूद बेचता हूं और कहता हूं – मैं तो बड़ा धर्मवान हूं। अरे! नहीं, तेरी आजीविका गंदी है ना? तू लोगों को शील-सदाचार का जीवन जीने में बाधक बन रहा है। उनको अपना शील भंग करने में तू सहायक बन रहा है? गलत आजीविका हुई।

एक व्यक्ति कहे, मैं तो हत्या नहीं करता। किसी पशु की हत्या नहीं करता पर गाय पालता हूं, भेड़ बकरियां पालता हूं और उनको खूब अच्छा खिला-पिला करके मोटा-ताजा करता हूं और कसाई को बेच देता हूं। अच्छे दाम मिलते हैं। अब कसाई जाने। वह मारता है तो मैं क्या करूं? अरे, कहां अच्छी आजीविका हुई रे? मैं कोई नशा-पता नहीं करता लेकिन नशे-पते का धंधा करता हूं, शराब का धंधा करता हूं, अफीम का धंधा करता हूं, गांजे का धंधा करता हूं। जो मुझसे ले जाय वह अपना शील भंग करे। अरे, तो कैसी आजीविका हुई रे? मैं विष का धंधा करता हूं जो ले जाय, किसी को मारे। तो अपने को जांच करके देखें कि जिस धंधे से, जिस रोजगार से, जिस पेशे से मेरे घर में धन आ रहा है वह और लोगों को गलत रास्ते जाने में कहीं सहायक तो नहीं बन रहा? बन रहा है तो आजीविका सम्यक नहीं, बिल्कुल नहीं।

बहुतसी आजीविका ऊपर-ऊपर से देखने से लगती है बहुत सम्यक है और सचमुच सम्यक है लेकिन उसके साथ-साथ एक बात यह भी देखनी होती है कि उस आजीविका का काम करने वाला, उस पेशे का काम करने वाला, उस रोजी का काम करने वाला, उसके चित्त की चेतना कैसी है? अगर उसके चित्त की चेतना दूषित है तो किया हुआ अच्छा काम भी ऊपर-ऊपर से यों लगता है कि यह काम तो बड़ा अच्छा है। यह रोजी, यह पेशा तो बड़ा अच्छा है लेकिन दूषित हो जाएगा, सम्यक नहीं रहेगा। आजीविका के पीछे चित्त की चेतना कैसी है?

मेरे जीवन की एक घटना, कोई चालीस-पैंतालीस वर्ष हुए होंगे, यह उन दिनों की बात है जब शुद्ध धर्म क्या होता है इसका नाम ही नहीं सुना था। अंतर्मुखी होकर के अपने आपको देखने की विद्या ही कभी नहीं सीखी थी। घर में कोई बीमार पड़ा। हमारे जो फेमिली डाक्टर थे, वे कहीं छुट्टी पर गये हुए थे तो किसी और

डाक्टर को बुलाने के लिए चला गया। जानता था, वह बड़ा व्यस्त है शायद घर न आये। लेकिन संयोग ऐसा हुआ कि जब उसके यहां गया तो वह बैठा मक्खी मार रहा है, उसके पास कोई पेशेंट नहीं, कोई रोगी नहीं। तो ऐसे ही उत्सुकतावश पूछ लिया –डाक्टर साहब, आपके यहां तो रोज बड़ी भीड़ रहती है। क्या बात है आज, कोई रोगी नहीं? तो बड़े उदास चेहरे से कहता है भाई, क्या करें, इस मौसम में तो शहर में कोई न कोई बड़ी बीमारी फैलती ही है। इस साल क्या हो गया, पता नहीं, कोई बीमारी ही नहीं फैली। यह सुन करके मेरे मुँह का जायका खराब हो गया। अरे, यह डाक्टर है और चाहता है अधिक से अधिक लोग बीमार हों, कैसा डाक्टर है? लोगों का बुरा चाहता है? बड़ा बुरा लगा।

समय पाकर यह कल्याणकारी विद्या मिली। शुद्ध धर्म मिला। पहले तो धर्म के नाम पर ऐसे ही पाखंडों में पड़े थे। धारण करना तो बहुत दूर, क्या धर्म होता है यह समझा ही नहीं था। जब शुद्ध धर्म मिला और भीतर देखने लगा तब अपने बारे में भी सच्चाइयां उभर-उभर कर सामने आने लगीं। मैं उस समय एक व्यापारी था। व्यापारी के घर में जन्मा, व्यापार का पेशा कर रहा तो व्यापारियों की मनोवृत्ति को खूब समझता हूं, आज भी समझता हूं। कहीं कोई युद्ध छिड गया, कोई विश्व-युद्ध छिड गया या कहीं दुर्भिक्ष पड़ गया और जो कंज्यूमर आइटम्स हैं उनकी कमी पड़ गयी, दाम बढ़ने लगे। दाम बढ़ने लगे तो व्यापारी अपनी भाषा में क्या कहते हैं –अरे, बाजार सुधर रहा है। उसके लिए बाजार सुधर रहा है। लोगों को तकलीफ हो रही है, इस बात का चिंतन नहीं है। मेरे घर में बहुत पैसा आ रहा है न! तो बाजार सुधर रहा है, बाजार सुधर रहा है। सारी लड़ाइयां बंद हो गयीं। अब दुर्भिक्ष नहीं, सुभिक्ष है; अकाल नहीं, सुकाल है; खूब उपज हुई है तो कंज्यूमर गुड्स के दाम गिरने लगे। दाम गिरने लगे तो बड़े उदास मन से व्यापारी कहता है –अरे, बाजार चौपट हो गया। अब तो बाजार चौपट हो गया, ऐसी मनोवृत्ति है।

व्यापार करना कोई बुरी बात नहीं है। हर कंज्यूमर अपनी आवश्यकता की वस्तु प्रोड्यूसर से जाकर नहीं खरीद सकता। प्रोड्यूसर से प्रोड्यूस की हुई वस्तु कंज्यूमर तक पहुँचाये, यह व्यापारी का काम है। बुरा नहीं है। उस मेहनत के लिए अपना पारिश्रमिक लेता है। उचित मुनाफा लेता है। कोई बुरी बात नहीं। लेकिन चित्त की चेतना, चित्त की चेतना प्रमुख है। उसी से आंका जायगा कि सचमुच जीवन में शील उतर रहा है कि नहीं उतर रहा? ऊपर-ऊपर से हमारी रोजी, हमारा पेशा ठीक है फिर भी हम उसका सदुपयोग नहीं कर रहे। उसको गलत तरीके से कर रहे हैं तो दूषित होने लगा। दूषित होने लगा तो हम सुशील होने की बजाय दुःशील होने लगे। यूं अपने आपको जांचते रहेंगे, हर कदम पर जांचते रहेंगे।

१९६९ से यह दो हजार वर्षों से लुप्त हुई विपश्यना विद्या भारत में आयी। शिविर लगने लगे। धर्म की गंगा है। हर तबके के लोग आते हैं, हर पेशे के लोग आते हैं, हर समाज के लोग आते हैं, हर संप्रदाय के लोग आते हैं। आने ही चाहिए। धर्म की गंगा है ना! जो आये उसी की प्यास बुझायेगी। वह इस बात को नहीं देखेगी कि यह मेरा जल पीने वाला व्यक्ति इस नाम का है कि उस नाम का है। इस गोत्र का है या उस गोत्र का है। इस वर्ण का है या उस वर्ण का है। जो पीये, उसी की प्यास बुझेगी। तो लोग आते हैं। व्यापारी वर्ग के भी लोग आते हैं और हमारे सामने अपनी कठिनाइयां रखते हैं – क्या करें, सारे के सारे देश की कैसी हालत है, शासन तंत्र की क्या हालत है। आप कहते हैं कि ईमानदारी से व्यापार करो। कैसे करें? जगह-जगह भ्रष्टाचार है, कैसे करें?

देखते हैं हम भी, सचमुच बुरा हाल है देश का। व्यापारी वर्ग भी दूषित है। ये शासन करने वाले अधिकारी भी दूषित हैं। ये राजनेता भी दूषित हैं। सब नहीं, पर अधिकांश ऐसे हैं तो क्या किया जाय? तब उन्हें केवल एक बात समझाते हैं कि हजार करप्शन हो, एक काम तो तुम कर ही सकते हो –यह समझ करके रखो कि तुम्हारे घर में जो पैसा आता है वह तुम्हारे ग्राहक की पाकेट से आता है। तो ग्राहक तुम्हारा अन्नदाता है। अपने अन्नदाता को भूल कर भी धोखा नहीं देना। उसे जो माल दे रहे हो उसकी क्वालिटी में, उसकी क्वांटिटी में, उसके माप में, उसके तोल में कभी धोखा नहीं देना। कभी कोई मिलावट की चीज किसी को नहीं दे देना। यह तो कर सकते हो ना? इतना-इतना तो धर्मवान बनें। अरे, एक कदम तो उठा धर्म का! और फिर धन कमाते हो, धन कमाना कोई बुरी बात नहीं। गृहस्थ को हाथ पसार कर मांगना बुरी बात है। जैसे किसी गृहत्यागी का धनवान हो जाना बुरी बात है, वैसे किसी गृहस्थ का कंगाल हो जाना बुरी बात है। अपने परिश्रम से, अपनी ईमानदारी से धन कमाये। पर धन आयेगा और अहंकार जागेगा। मैंने कमाया! देख, मैं कितना होशियार! और मैं बड़ा धर्मवान! तो अहंकार आयगा और मुक्ति से दूर चला जायगा। इस अहंकार को दूर करने के लिए जो कमाता है उसका कुछ हिस्सा – अधिक कमाता है तो अधिक हिस्सा, कम कमाता है तो कम हिस्सा समाज में बांट। पुरानी भाषा में कहते थे – समविभाग कर, समविभाग कर! यानी दान कर!

तो ये दो बातें यदि गृहस्थ सीख ले तो उसकी सम्यक आजीविका का रास्ता शुरू हो गया, आरंभ हो गया। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता चला जायगा। ये तीनों के तीनों **सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवा** ए हो तो समझो कि धर्म का पहला अंग –हमारा शील का अंग पुष्ट हुए जा रहा है, पुष्ट हुए जा रहा है। आगे बढ़ते-बढ़ते बाकी अंगों को भी पुष्ट करेंगे और मंगल साध लेंगे। खूब मंगल साध लेंगे। अरे, शुद्ध धर्म के रास्ते जो चले, जो भी चले, उसके जीवन में मंगल ही मंगल। उसके जीवन में कल्याण ही कल्याण। उसके जीवन में स्वस्ति ही स्वस्ति। उसके जीवन में मुक्ति ही मुक्ति।